

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 9: ध्रुव का वर पाकर घर लौटना

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



बाल-भक्त की तपस्या अपना फल देती है: जिन परम भगवान् को ध्रुव ने अपने हृदय में धारण किया था, वे अब उसके नेत्रों के समक्ष खड़े हैं, और नन्हा बालक विस्मय तथा प्रेम में धरती पर गिर पड़ता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में बालक ध्रुव, एक कठोर वचन से आहत तथा अपनी माता के उपदेश से ऊपर उठकर, महल छोड़कर वन की ओर गया, देवर्षि नारद से पवित्र द्वादशाक्षर मन्त्र पाया, और एक ऐसी तपस्या को स्वयं को सौंप दिया जो इतनी प्रचण्ड थी कि लोक स्वयं हिल उठे। यह नवम अध्याय

उसी खोज का प्रतिफल है। बालक ने जिन भगवान् को भीतर ही भीतर निरन्तर स्मरण रखा था, वे अब उसके सम्मुख साक्षात् प्रकट होते हैं; वे अपने शंख से बालक के गाल का स्पर्श कर उसकी वाणी को स्तुति के लिए खोल देते हैं; और, ध्रुव के हृदयस्पर्शी स्तोत्र से प्रसन्न होकर, वे उसे किसी भी सिंहासन से बढ़कर एक वर देते हैं — सप्तर्षियों से भी ऊपर एक अविनाशी, सदा-प्रकाशमान धाम, जहाँ से कोई नहीं लौटता। फिर ध्रुव घर लौटता है, उस पिता द्वारा हर्ष तथा पश्चात्ताप से स्वागत पाने के लिए जिसने कभी मुँह मोड़ लिया था, और समय पर राजा के रूप में अभिषिक्त होता है। यह वह अध्याय है जहाँ एक आहत बालक के प्रेम का उत्तर भगवान् की करुणा देती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 9 (नवम अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: ध्रुव का भगवान् से वर पाकर घर लौटना
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में (जिसमें ध्रुव तथा भगवान् के वचन उद्धृत हैं)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: यमुना-तट पर स्थित मधुवन, तथा राजा उत्तानपाद की राजधानी
- केन्द्रीय विषय: भगवान् का ध्रुव के समक्ष प्राकट्य, ध्रुव का स्तोत्र, अविनाशी धाम का वरदान, तथा उसका हर्षपूर्ण गृह-आगमन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 1-67
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 8 ने बालक ध्रुव को मधुवन के वन में गहन तपस्या में छोड़ा था, ऐसी पूर्ण तपस्या में लीन कि ब्रह्माण्ड की श्वास ही मानो रुकने लगी और देवगण भयभीत हो गए। परम भगवान् ने उन्हें आश्चस्त किया कि यह विक्षोभ किसी शत्रु से नहीं, बल्कि एक नन्हे बालक से है जो पूर्णतः उन्हीं में लीन है, और उन्होंने अपने नन्हे भक्त के पास जाने का वचन दिया। यह नवम अध्याय ठीक उसी क्षण से आरम्भ होता है — भगवान् के आगमन से।

दर्शन का लोप और भगवान् का प्राकट्य

जब ध्रुव परिपक्व तथा एकाग्र मन से ध्यान कर रहा था, तब भगवान् का तेजोमय रूप — बिजली-सा उज्ज्वल — उसके हृदय-कमल में प्रकाशित हुआ। फिर, अकस्मात्, वह अन्तर्दर्शन लुप्त हो गया। चौंकर बालक ने नेत्र खोले — और उसके समक्ष वही रूप खड़ा था जिसे वह भीतर देख रहा था।

स वै धिया योगविपाकतीव्रया
हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ।
तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य
बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥ २ ॥

*sa vai dhiyā yoga-vipāka-tīvrayā hṛt-padma-koṣe sphuritaṁ taḍit-prabham tirohitaṁ
sahasaivopalakṣya bahiḥ-sthitaṁ tad-avasthaṁ dadarśa*

अर्थ: भगवान् का बिजली-सा उज्ज्वल रूप, जो उसकी तीव्र समाधि से हृदय-कमल में प्रकाशित हुआ था, जब सहसा लुप्त हो गया, तब ध्रुव ने नेत्र खोले और वही रूप अब बाहर, अपने समक्ष खड़ा देखा। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 2)

अभिभूत होकर बालक दण्ड की भाँति धरती पर गिरकर प्रणाम करने लगा, और भगवान् को ऐसे निहारने लगा मानो नेत्रों से पी रहा हो, मन से चूम रहा हो, भुजाओं से आलिंगन कर रहा हो।

शंख का स्पर्श

ध्रुव उपयुक्त स्तुति अर्पित करना चाहता था, किन्तु वह केवल एक बालक था और आरम्भ करना नहीं जानता था। प्रत्येक प्राणी के हृदय में विराजमान भगवान् ने बालक की इच्छा जान ली, और शुद्ध करुणा से अपने शंख को बालक के गाल से स्पर्श कराया।

स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरि-
ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ।
कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना
पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥

*sa taṁ vivakṣantaṁ atad-vidaṁ harir jñātvāsyā sarvasya ca hṛdy avasthitaḥ kṛtāñjaliṁ
brahmamayena kambunā pasparśa bālāṁ kṛpayā kapole*

अर्थ: यह जानकर कि हाथ जोड़े खड़ा बालक स्तुति करना चाहता है किन्तु जानता नहीं, सबके हृदय में विराजमान श्रीहरि ने करुणापूर्वक अपने पवित्र शंख से बालक के गाल का स्पर्श किया। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 4)



बालक की स्तुति करने की अनकही उत्कण्ठा को समझकर, परम भगवान् कोमलता से अपना पवित्र शंख ध्रुव के गाल से स्पर्श कराते हैं, और बालक की जिह्वा एक प्रेरित स्तोत्र उँडेलने को खुल जाती है (श्लोक 4-7)।

उस पवित्र स्पर्श से बालक में दिव्य ज्ञान तथा वाक्-सामर्थ्य जाग उठा, और उसने असाधारण गहराई का स्तोत्र अर्पित किया। उसने भगवान् की स्तुति उस एक परम सत्ता के रूप में की जो अपनी अचिन्त्य शक्ति माया के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं, उसमें अन्तर्यामी आत्मा के रूप में प्रवेश करते हैं, और फिर भी उसके विविध रूपों में अखण्ड प्रकाशित होते हैं — जैसे एक ही अग्नि भिन्न-भिन्न आकार के काष्ठों में भिन्न-भिन्न रूप से जलती है।

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वानुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु
नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥

*ekas tvam eva bhagavann idam ātma-śaktyā māyākhyayoru-guṇayā mahad-ādy-aśeṣam
sṛṣṭvānuviśya puruṣas tad-asad-guṇeṣu nāneva dāruṣu vibhāvasuvad vibhāsi*

अर्थ: हे भगवन्, केवल आप ही अपनी माया नामक शक्ति से इस समस्त ब्रह्माण्ड को महत्तत्त्व आदि से रचते हैं, और परम पुरुष रूप में उसमें प्रवेश कर उसके गुणों में विविध रूप से प्रकाशित होते हैं — जैसे एक अग्नि भिन्न-भिन्न काष्ठों में अनेक रूपों में जलती है। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 7)

ध्रुव ने आगे स्वीकार किया कि वह आरम्भ में केवल अपने पूर्वजों से ऊँचा पद खोजता हुआ आया था, किन्तु अब स्वयं भगवान् को देख लेने पर उसे ऐसी किसी वस्तु की चाह नहीं रही; भगवान् का दर्शन स्वर्ग के समस्त वरदानों से मधुर था, और उसने केवल भगवान् के भक्तों का संग माँगा, जिनके मध्य संसार-सागर सहज ही पार हो जाता है।

आवेनाशी वरदान

भगवान् बालक की शुद्ध तथा निःस्वार्थ स्तुति से प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि वे ध्रुव के हृदय में छिपी अभिलाषा को पहले से जानते हैं, और यद्यपि वह दुर्लभ है, वे उसे प्रदान करेंगे।

श्रीभगवानुवाच

वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ।

तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९ ॥

śrī-bhagavān uvāca vedāhaṁ te vyavasitaṁ hṛdi rājanya-bālaka tat prayacchāmi bhadraṁ te durāpam api suvrata

अर्थ: भगवान् ने कहा: हे राजकुमार, हे दृढव्रत बालक, मैं तेरे हृदय के संकल्प को जानता हूँ; यद्यपि वह दुर्लभ है, मैं वह तुझे देता हूँ। तेरा कल्याण हो। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 19)

तब भगवान् ने उसकी प्रतीक्षा में स्थित समस्त महिमा प्रकट की। ध्रुव को एक तेजोमय, स्वयं-प्रकाशमान आसन प्राप्त होगा — वह ध्रुव-स्थान जिसके चारों ओर तारे, ग्रह, और महर्षि तक निरन्तर परिक्रमा करते हैं, उन सबसे ऊपर एक अटल बिन्दु। वह हजारों वर्ष अक्षीण बल से पृथ्वी पर शासन करेगा; महान् यज्ञ तथा दान करेगा, प्रत्येक उचित वरदान भोगेगा, और अन्त में भगवान् का स्मरण करेगा। भगवान् ने आने वाले वर्षों के विषय में एक गम्भीर बात भी कही: समय आने पर ध्रुव के भाई उत्तम की वन में शिकार करते हुए मृत्यु हो जाएगी, और उनकी सौतेली माता सुरुचि, पुत्र की खोज में शोकाकुल होकर, वनाग्नि में भस्म हो जाएँगी — कहा जाता है कि यह उस अपमान का प्रतिफल था जो उन्होंने कभी भगवान् के एक भक्त को दिया था (श्लोक 23)। और फिर वह उस परम धाम को जाएगा, जो समस्त लोकों से वन्दित है, सप्तर्षियों से ऊपर स्थित — वह स्थान जहाँ से कोई कभी नहीं लौटता।

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ।

उपरिष्ठादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २५ ॥

tato gantāsi mat-sthānaṁ sarva-loka-namaskṛtam upariṣṭād ṛṣibhyas tvam yato nāvartate gataḥ

अर्थ: तब तू मेरे उस धाम को जाएगा, जो समस्त लोकों से वन्दित है और सप्तर्षियों से ऊपर स्थित है; वहाँ पहुँचकर तू फिर कभी इस संसार में नहीं लौटेगा। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 25)



ध्रुव की निःस्वार्थ स्तुति से प्रसन्न होकर, परम भगवान् बालक को सप्तर्षियों से ऊपर एक अविनाशी, स्वयं-प्रकाशमान धाम प्रदान करते हैं — वह अटल ध्रुव-आसन जिसके चारों ओर तारे स्वयं परिक्रमा करते हैं (श्लोक 19-25)।

यह प्रदान करके, ध्रुव द्वारा पूजित भगवान्, बालक के देखते-देखते अपने धाम को प्रस्थान कर गए। फिर भी ध्रुव पूर्णतः प्रसन्न न था।

घर पहुँचने पर, जब विदुर ने मैत्रेय से यह कथा सुनी, तो उन्होंने पूछा कि जिस बालक ने एक ही जीवन में इतना उच्च लक्ष्य प्राप्त कर लिया, वह हर्षित होने के अतिरिक्त और कैसे लौट सकता है। मैत्रेय का उत्तर स्वयं ध्रुव की स्वीकारोक्ति बन गया: अपनी प्रार्थना पर विचार करते हुए, ध्रुव को यह पीड़ा हुई कि वे उन्हीं भगवान् के समक्ष खड़े थे जो अकेले जन्म-मृत्यु की गाँठ काट सकते हैं, फिर भी अपनी सौतेली माता के पुराने अपमान से आहत होकर, उन्होंने केवल एक ऐसे राज्य की याचना की जो अन्ततः नष्ट हो जाएगा (श्लोक 27-34)।

स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत ।

ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३५ ॥

svārājyaṁ yacchato mauḍhyān māno me bhikṣito bata īśvarāt kṣīṇa-puṇyena phalī-kārān ivādhanaḥ

अर्थ: शुद्ध मूढ़ता के कारण, जब भगवान् — जो स्वयं पूर्ण आत्म-प्रभुत्व हैं — मुझे अपने ही चरणों की भक्ति प्रदान करने को तत्पर थे, तब मैंने इसके स्थान पर सांसारिक पद तथा यश माँगा; मैं उस भिखारी के समान था जिसे एक महान् राजा से कुछ भी माँगने की अनुमति मिलने पर, वह केवल भूखी के कुछ अवशेष माँग बैठता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 35)

मैत्रेय ने विदुर को यह शिक्षा स्पष्ट रूप से दी: सच्चा समर्पित भक्त भगवान् से कुछ भी नहीं माँगता, केवल उनकी सेवा में सन्तुष्ट रहता है; भगवान् जो कुछ और देते हैं वह विशुद्ध कृपा है, भक्ति के मूल्य या मापदण्ड का सूचक कभी नहीं (श्लोक 36)।

हर्षपूर्ण गृह-आगमन

ध्रुव अपने पिता की नगरी लौटा। राजा उत्तानपाद, जिन्होंने नारद से सुना था कि उनका खोया पुत्र रक्षित तथा यशस्वी है, हर्ष तथा पश्चात्ताप से भरे हृदय से उससे मिलने बाहर आए। अभिभूत होकर, उन्होंने बालक को उठा लिया, बार-बार आलिंगन किया, और अश्रुओं से नहला दिया, अन्ततः उस बालक को पुनः पाकर जिसे उन्होंने कभी जाने दिया था। उनकी माता सुनीति ने भी उस पुत्र को हृदय से लगाया जिसके वनवास ने उन्हें इतने अश्रु दिए थे। ध्रुव तथा उसके छोटे भाई उत्तम को एक हथिनी पर बिठाया गया, और राजा, समस्त प्रजा द्वारा प्रशंसित, उत्सव में राजधानी में प्रवेश कर गए।

लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ।

आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥ ५३ ॥

lālyamānaṁ janair evaṁ dhruvaṁ sabhrātaraṁ nṛpaḥ āropya kariṇīm hṛṣṭaḥ stūyamāno 'viśat puram

अर्थ: जब प्रजा ने ध्रुव का स्नेहपूर्वक स्वागत किया, तब प्रसन्न राजा ने उसे तथा उसके भाई को एक हथिनी पर बिठाया, और चारों ओर से प्रशंसित होते हुए अपनी राजधानी में प्रवेश किया। (स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 53)



पश्चात्तापी तथा अत्यन्त हर्षित, राजा उत्तानपाद अपने लौटते पुत्र से मिलने बाहर जाते हैं, उसे अश्रुओं सहित आलिंगन करते हैं, और ध्रुव तथा उसके भाई को एक हथिनी पर बिठाकर उत्सवमय राजधानी में प्रवेश करते हैं (श्लोक 51-53)।

समय की पूर्णता में, अपनी बढ़ती आयु पर विचार करते हुए और अपनी आत्मा के कल्याण की ओर मन मोड़ते हुए, राजा उत्तानपाद ने योग्य ध्रुव को सिंहासन पर अभिषिक्त किया और आत्मा के लक्ष्य को खोजने वन को चले गए।

आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशाम्पतिः ।

वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥ ६७ ॥

ātmānaṁ ca pravayasam ākalayya viśāmpatiḥ vanaṁ viraktaḥ prātiṣṭhad vimṛśann ātmano gatim

अर्थ: अपनी बढ़ती आयु पर विचार करते हुए, राजा उत्तानपाद विरक्त हो गए, और आत्मा के लक्ष्य पर मनन करते हुए वन को प्रस्थान कर गए।
(स्कन्ध 4, अध्याय 9, श्लोक 67)



पिता के वन को चले जाने पर, ध्रुव धर्मपूर्वक शासन करने के लिए अभिषिक्त होता है — वह कभी तिरस्कृत बालक अब उस महिमा में आसीन जिसका भगवान् ने वचन दिया था (श्लोक 67)।

इस प्रकार अध्याय उस बालक के साथ समाप्त होता है, जिसे कभी अपने पिता की गोद से वंचित किया गया था, अब अपने पिता, अपनी माता, अपनी प्रजा, और स्वयं भगवान् द्वारा सम्मानित — एक बहिष्कृत राजा में बदला, और एक राजा जो आकाश में एक अविनाशी सिंहासन के लिए नियत है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् उस हृदय के पास आते हैं जो सच्चे मन से उन्हें खोजता है। जिस रूप को ध्रुव ने अपने हृदय में धारण किया, वही बाहर निकलकर उसके नेत्रों के समक्ष खड़ा हुआ। जब भक्ति पूर्ण होती है, तब अन्तर्दर्शन एक जीवित उपस्थिति बन जाता है (श्लोक 2)।
2. कृपा हमारी न्यूनता की पूर्ति करती है। बालक स्तुति करना नहीं जानता था, इसलिए भगवान् ने स्वयं उसके गाल का स्पर्श किया और उसे वचन दिए। जो हम स्वयं नहीं कर सकते, वह भगवान् की करुणा हममें सिद्ध करती है (श्लोक 4)।

3. भगवान् को देखना छोटी अभिलाषाओं से आगे बढ़ जाना है। ध्रुव अपने पूर्वजों से ऊँचे सिंहासन के लिए आया था; भगवान् को देख लेने पर उसे उसकी चाह न रही, और उसने केवल भक्तों का संग माँगा। भगवान् का दर्शन प्रत्येक अभिलाषा को पुनः व्यवस्थित कर देता है (श्लोक 7-11)।

4. भगवान् वह भी देते हैं जो दुर्लभ है। ध्रुव को सप्तर्षियों से ऊपर एक आसन मिला, अविनाशी तथा स्वयं-प्रकाशमान — किसी भी सांसारिक पुरस्कार से बढ़कर वर, एक बालक के शुद्ध प्रेम को निःशुल्क दिया गया (श्लोक 19-25)।

5. प्रेम का उत्तर पुराने घावों को भर देता है। जिस पिता ने ध्रुव को दूर किया, वही अब उसे अश्रुओं सहित आलिंगन करता है; वनवास सम्मान में समाप्त होता है। भगवान् के प्रति भक्ति उन्हीं बन्धनों को जोड़ देती है जिन्हें कभी अभिमान ने तोड़ा था (श्लोक 42-53)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय का सबसे मार्मिक मोड़ अविनाशी सिंहासन का वरदान नहीं है, चाहे वह कितना ही विस्मयकारी क्यों न हो। यह वह छोटी, कोमल स्वीकारोक्ति है जो ध्रुव ने बाद में की — यह स्वयं-स्वीकृति कि अविनाशी सिंहासन पा चुका बालक भी यह अनुभव कर सकता है कि जब समस्त लोकों के भगवान् स्वयं उसके समक्ष खड़े थे, तब उसने बहुत कम माँगा, और बहुत नीचा लक्ष्य रखा। वह वन में एक बालक की आहत महत्वाकांक्षा लेकर गया था — उनसे ऊँचा होने की जिन्होंने उसे तिरस्कृत किया — और वह उसे पूर्णतः भूलकर लौटा, क्योंकि उसने कुछ अतुलनीय रूप से महान् पा लिया था। यही सच्ची भक्ति की मौन रसायन-क्रिया है: वह हमारी छोटी अभिलाषाओं की पूर्ति उतना नहीं करती जितना उन्हें एक बड़े प्रेम के प्रकाश में घोल देती है। हम प्रायः भगवान् के पास, ध्रुव की भाँति, अपने हाथों में घावों तथा चाहों का एक गट्टर पकड़े आते हैं। भगवान् की करुणा यह है कि वे हमें वैसे ही स्वीकार करते हैं — हमारे गाल का स्पर्श करते हैं, हमारी जिह्वा खोलते हैं, और फिर हमें स्वयं को देते हैं, जब तक कि वही वस्तुएँ जिन्हें माँगने हम आए थे, छोटी होकर झड़ न जाएँ। अन्त में ध्रुव के लिए जो वरदान सबसे महत्त्वपूर्ण था वह बस यह था कि उसे देखने की अनुमति मिली।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपनी प्रार्थना को ध्रुव की भाँति माँगने से देखने की ओर ले जाएँ। शान्त बैठें, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” का जप करें, और भगवान् के समक्ष, सच्चाई से, जो कुछ आप उनसे माँगते रहे हैं उसे रखें — कोई आवश्यकता, कोई चिन्ता, कोई अभिलाषा। उसे उनके समक्ष बिना लज्जा के नाम दें, जैसे ध्रुव ने अपनी अभिलाषा को नाम दिया। फिर, उसे अर्पित करके, उसे विश्राम करने दें, और इसके स्थान पर केवल यह कृपा माँगें कि आप उन्हें स्मरण रखें और उनसे प्रेम करने वालों का संग करें। समापन में, स्मरण करें कि जिन भगवान् ने वन में एक बालक के गाल का स्पर्श किया, वे आपके अपने हृदय के भी उतने ही निकट विराजमान हैं, वे शब्द देने को तैयार जो आप नहीं पाते और वह प्रेम जो आप स्वयं नहीं जुटा सकते।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का नवम अध्याय ध्रुव की खोज का प्रतिफल है। जैसे ही बालक ध्यान करता है, हृदय के भीतर का तेजोमय रूप सहसा लुप्त हो जाता है, और वह नेत्र खोलकर भगवान् को अपने समक्ष खड़ा पाता है। स्तुति न कर पाने पर, वह भगवान् की अपनी करुणा से सहायता पाता है — गाल पर शंख का स्पर्श — और एक प्रेरित स्तोत्र उँडेल देता है, यह स्वीकार करते हुए कि भगवान् के दर्शन ने प्रत्येक छोटी अभिलाषा को छोटा कर दिया। प्रसन्न होकर, भगवान् उसे एक दुर्लभ वर देते हैं: सप्तर्षियों से ऊपर एक अविनाशी, स्वयं-प्रकाशमान धाम, एक दीर्घ तथा

यशस्वी शासन, और वह स्थान जहाँ से कोई नहीं लौटता। ध्रुव घर लौटता है, एक हर्ष तथा पश्चात्ताप से अभिभूत पिता के पास, अपनी माता तथा प्रजा द्वारा स्वागत पाता है, और समय पर राजा के रूप में अभिषिक्त होता है जबकि उत्तानपाद वन को चले जाते हैं। इस प्रकार वह कभी तिरस्कृत बालक सबके द्वारा सम्मानित होता है, उसकी आहत महत्वाकांक्षा उस शुद्ध प्रेम में बदल जाती है जो भगवान् को देखता है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

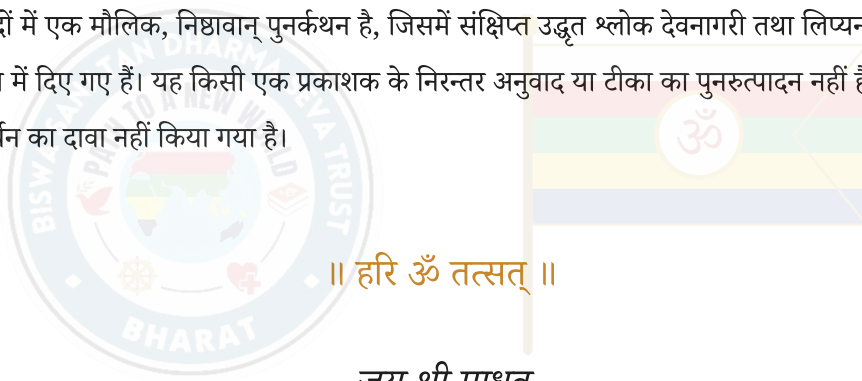
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, नवम अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-9-dhruva-returns-home-with-a-boon-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट